



## गीता दर्शन में मूल्यपरक शिक्षा

□ शिल्पी श्रीवास्तव

□□ डॉ० अवधेश श्रीवास्तव

**सारंश-** गीता में उपनिषदों के ही समान परमतत्व की मीमांसा दो विषयों से की गई है— एक तो विषयगत विश्लेषण से, और दूसरे विषयीगत विश्लेषण से। गीता के रचयिता के आध्यात्मिक भुकाव दूसरे अध्याय में स्पष्टरूप से प्रकाश डाला गया है। जहां उसने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया है जिस पर उसकी योजना का आधार है: असत् में सत् उत्पन्न नहीं हो सकता और सत् का अभाव कभी नहीं होता। सारतत्व एवं अभाव के मध्य, अमर और नश्वर के मध्य, तथा अक्षर क्षर के मध्य भेद को आधार बनाकर आगे बढ़ता है। संसार के अंदर ये दो सत्य हैं, क्षर ओर अक्षर। अपरिवर्तनशील अक्षर है। हम यह नहीं कह सकते कि वह अपरिवर्तनशील, जिसका यहां निर्देश किया गया है कि सर्वोपरि यथार्थसत्ता है क्यों कि अगले ही श्लोक में गीता घोषणा करती है कि सर्वोपरि सत्ता दूसरी ही है जिसे सर्वोच्च आत्मा अर्थात् परमात्मा कहते हैं, जो अक्षय भगवान, तीनों लोकों में व्याप्त है और उन्हें धारण कर हुए है। गीता का रचयिता पहले संसार की स्थायी पृष्ठभूमि को उसके क्षणिक व्यक्तरूपों से भिन्न करके बतलाता है अर्थात् वह प्रकृति है जो परिवर्तनों से पृथक है। इस अनुभविक लोक में हमें नश्वर एवं स्थायी दोनों ही पक्ष मिलते हैं। यद्यपि संसार के परिवर्तनों की तुलना में प्रकृति नित्य है तो भी यह निरपेक्षरूप से स्थायी नहीं है, क्योंकि इसका आधार भी सर्वोपरि जगत का स्वामी है। यह सर्वोपरि आत्मा ही यथार्थ में अमर है जो नित्य का आश्रय—स्थान है। रामानुज अपने विशेष सिद्धान्त की अनुकूलता को ध्यान में रखकर क्षर का अर्थ प्रकृतितत्व और अक्षर का अर्थ जीवात्मा करते हैं, फिर भी पुरुषोत्तम अथवा सर्वोपरि आत्मा को इन दोनों से उत्कृष्ट एवं ऊपर बताते हैं। हमारे लिए यह सम्भव है कि पुरुषोत्तम के भाव की व्याख्या करने में हम उसका एक ठोस मूर्तरूप व्यक्तिगत स्वीकार कर लें जो कि सीमित तथा असीम के मिथ्या अमूर्तभावों से उत्कृष्ट है। कठिनाई केवल यही है कि ब्रह्मा को, जिसे सीमित जगत का भी आधार बताया गया है, केवल अमूर्तरूप में नहीं समझा जा सकता है। गीता सीमित अथवा अस्थायी एवं असीम अथवा स्थायी सत्ता में भेद करती है। जो कुछ सीमा वाला और क्षणिक प्रकृति वाला है वह यथार्थ नहीं है। समग्र परिणमन एक अमान्य प्रतिषेध है। जो परिणत होता है वह यथार्थ नहीं यह सत होता तो इसका परिणमन न होता। चूंकि संसार की सब वस्तुओं में क्षणिकता लक्षित होती है। हमारी चेतना की पृष्ठभूमि में इस प्रकार का एक विश्वास अवश्य है कि ऐसी कोई वस्तु अवश्य है जो नष्ट नहीं होती। क्योंकि अभाव से किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। वह यथार्थसत्ता रूपी परम सत् सदा बदलती रहने वाली प्रकृति नहीं हो सकती है। यह सर्वोपरि परब्रह्मा ही है। यह अनादि, अनन्त और कूटस्थ या चट्टान कर तरह दृढ़ है जबकि जगत केवल समयरहित और अन्त—रहित सत्ता, अनादिप्रवाहिसता है। यथार्थ में द्रष्टा वहीं है जो कि सर्वोपरि प्रभु को सब वस्तुओं में एक समान विद्यमान रहने वाला करके देखता है जो वस्तुओं के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।

भगवद्गीता, जो महाभारत के भीष्मपर्व का एक भाग है, संस्कृत—साहित्य का एक अत्यन्त लोकप्रिय धार्मिक काव्य है। यह सबसे अधिक सुन्दर और यथार्थ अर्थों में सम्भवतः एक मात्र दार्शनिक गीत है जो किसी ज्ञात भाषा में लिखा गया है। इसे श्रुति तो नहीं समझा जाता और न ईश्वरीय प्रेरणा स्वरूप धर्मशास्त्र ही माना

- शोध—छात्रा, शिक्षाशास्त्र भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान) भारत  
□ असिस्टेंट प्रोफेसर, बी.एड./एम.एड.विभाग, चौ.चरण सिंह पी.जी.कालेज, हँवरा, इटावा (उ०प्र०) भारत

जाता है, किन्तु स्मृतियों में इसकी गणना होती है, और इसे परम्परा भी कह सकते हैं। यदि किसी ग्रन्थ का मनुष्य को मन पर कितना अधिका है, इसे उस ग्रन्थ के महत्व की कसौटी समझा जाए तो कहना होगा कि गीता भारतीय विचार धारा में सबसे अधिक प्रभावशाली ग्रन्थ है। मोक्ष के विषय में इसका सन्देश सरल है। जहां एक ओर केवल धनवान व्यक्ति ही अपने यज्ञों के द्वारा देवताओं को खरीद सकते थे और केवल सभ्य पुरुष ही ज्ञान के मार्ग का अनुसरण कर सकते थे, गीता एक ऐसी विधि बतलाती है जो सबकी पहुंच के अन्दर है, और वह है भक्ति अर्थात् ईश्वर में श्रद्धा का भाव। इसका रचयिता कवि गुरु को ही साक्षात् ईश्वर का रूप देता है जो मनुष्य जाति के अन्दर उतर आया है। वह मनुष्यों के प्रतिनिधि रूप अर्जुन को उसके जीवन के एक बड़े संकट के समय में उपदेश देता है।

कृष्ण ईश्वर की वाणी का उपलक्षण है जो अपना सन्देश पुलकित कर देने वाले शब्दों में दे रही है और अर्जुन को सावधान कर रही है कि वह अपने मन में निराशा को स्थान दे। प्रारम्भिक अध्याय में कृष्ण के मानवीय हृदय के अन्तनिरीक्षण की महत्ता का पता चलता है जिसमें उन्होंने बताया है कि किस प्रकार हृदय के अन्दर प्रेरक भावों का अर्न्तर्द्वन्द्व चलता है, कहाँ तक स्वार्थलता प्रबल रहती है और पाप की भावना किस प्रकार मनुष्य को पथभ्रष्ट होने की प्रेरणा देती है। ज्यों-ज्यों संवाद आगे बढ़ता है, नाटकीय रूप विलुप्त हो जाता है। युद्धक्षेत्र की प्रतिध्वनि समाप्त होती है और ईश्वर तथा मनुष्य के मध्य वार्तालाप मात्र रह जाता है। युद्ध का रथ जैसे ध्यान के लिए बन्द हो चुकी होती है, सर्वोपरि सत्ता विषय में विचार करने के लिए एक उपयुक्त स्थान बन जाता है।

गीता के सन्देश का क्षेत्र सार्वभौम है। यह प्रचलित हिन्दूधर्म का दार्शनिक आधार है। इसका रचयिता गहरी संस्कृति वाला है, समालोचक न होकर सर्वग्राही है। वह किसी धार्मिक आन्दोलन का नेता नहीं है, उसका उपदेश किसी सम्प्रदाय-विशेष के लिए नहीं है, उसने अपना कोई सम्प्रदाय स्थापित नहीं किया किन्तु मनुष्य-मात्र के लिए उसका निर्दिष्ट मार्ग खुला है। सब प्रकार की उपासना-पद्धतियों के साथ उसकी

सहानुभूति है, और इसलिए हिन्दू धर्म की भावना की व्याख्या के कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त है, क्योंकि हिन्दू धर्म अपनी संस्कृति को भिन्न-भिन्न विभागों में विभक्त करने की इच्छा नहीं रखता और न ही अन्य विचारों की विधियों के प्रति खण्डनात्मक भाव रखना चाहता है। गीता केवल अपने विचार की प्रबलता तथा दूरदर्शिता की भव्यता के ही कारण नहीं, अपितु भक्ति के प्रति उत्साह तथा धार्मिक भावना की मधुरता के कारण भी हमारे ऊपर अपनी असर रखती है। यद्यपि गीता ने धार्मिक पूजा को विकसित करने और अमानुषिक प्रक्रियाओं का मूलोच्छेदन करने के लिए बहुत कुछ किया, तो भी अपनी खण्डन-विरोधी प्रवृत्ति के कारण इसने पूजा की मिथ्याविधियों को सर्वथा नष्ट नहीं किया।

किसी भी राष्ट्र के लिये दिशा निर्धारण में मुख्य दायित्व का निर्वाहन करती है। वर्तमान परिवेश में सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएँ जनमानस के पटल पर हैं, परन्तु उनका परिणाम सर्वज्ञात है जिन विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं, वे मुकाम तक पहुंचने की बात तो दूर, चंद कदमों के बाद ही दम तोड़ती नजर आती।

विशिष्ट लेखिका तथा सम्पादिका मृगाल पाण्डे को विगत दिनों तक लेख पढ़ने को मिला जिसमें उन्होंने शिक्षा व्यवस्था पर ध्यानाकर्षित करने का जीवंत प्रयास किया, भारत के स्थम्भ लोकसभा तथा राज्यसभा में अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार का विधेयक की दुर्दशा क्षोभ की बात है। और इस ध्यानाकर्षण पर लेखिका को कोटिश: धन्यवाद।

महज योजना बनाने पर देश का विकास संभव नहीं है, वर्तमान में शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से हुआ है। परन्तु व्यवस्था की बात पर शून्य ही प्राप्त होता है। एक विशिष्ट विद्यालय में प्रोजेक्टर पर जूनियर कक्षाओं का संचालन हो रहा था परन्तु छात्र/छात्राओं से विषय पर बात करने से जो परिणाम सामने आये हैं वो चौकाने वाले थे। विषय जिस पर पाठन किया गया, उस पर बहुत कम बच्चे ही समझने में समझ हो सके हैं। जबकि शिक्षा एक विशिष्ट विद्यालय व अंग्रेजी माध्यम में दी जा रही थी। कारण

शिवसंल्पापादिका है। कर्म, अकर्म और विकर्म की व्याख्या स्पष्ट था, दोषपूर्ण पाठयक्रम, दोषपूर्ण प्राविधि, दोषपूर्ण शिक्षा नीतियां।

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय ज्ञानगरिमाकी अभिविज्ञा अमूल्यनिधि है। भगवान कृष्ण के मुखार विन्द से निःसृत यह गीता सारस्वगतरससारसरोवरसमुद्भूत सुमधुर सुद्राव है। किं वा अखण्ड ज्ञानपारावारप्रसूता लौकिक प्रभाभासुर दिव्यालोक है। किं वा इस भीषण भवाटवीमें अन्तहीन यात्रा के पथिक यायावर प्राणीके लिये यह अनुपम मधुर पाथये है। ज्ञान भाण्डागार उपनिषदों का यह सारसर्वस्व है। प्रस्थानत्रयीमें प्रतिष्ठापित यह गीता मननपथमानीयमान होकर भग्नावरणचिद् विशिष्ट वेदान्तर सम्पर्क शून्य अपूर्ण आनन्दपलब्धिकी साधिका है। यह मानसिक मलापनयनपुरः सर मन को शिवसंल्पापादिका है। कर्म, अकर्म और विकर्मकी व्याख्या करने वाली यह गीता चित्तकों आहदित करती है। नैराश्य निहार को दूर कर कर्मवादका उपदेश देती है।

इसकी महनीयता इसी बात से व्यक्त होती है कि जितनी व्याख्या गीता की हुई है उतनी व्याख्या अन्य किसी ग्रन्थ की अद्यावधि नहीं हुई है। यह विश्वविश्रुत भारतीय संस्कृतिकी अक्षयय भाण्डागार है। तत्तुबुभुत्सुकों के लिये कल्याण मार्गो पदेशिका गीता सर्वत्र समादृत है।

गीता के रचनाकाल में परम्परा की यथार्थ तथा मनुष्य की नियति के विषय में नाना प्रकार के मत फैले हुए थे। एक ओर उपनिषदों की परम्परा थी जिसका आधार आत्मा की अन्तदृष्टि था, दूसरी ओर सांख्य का सिद्धान्त था जिसके अनुसार प्रकृति के साथ सम्बन्ध—विच्छेद करके मोक्ष प्राप्त किया जा सकता था, कर्म मीमांसा का मत था कि हम अपने कर्तव्यों कास पालन करके पूर्णयता को प्राप्त कर सकते हैं, भक्तिवाद भी था जिसके अनुसार हृदय की उन्नति के द्वारा ही मोक्ष का आनन्द प्राप्त किया जा सकता है, और दूसरी ओर, योगदर्शन के अनुसार, मनुष्य को उसी समय मोक्ष प्राप्त होता है जबकि जीवात्मा का शान्त जीवन संसार के नानाविध प्रकाश का स्थान ले लेता है। सर्वोपरि आत्मा को या तो अशरीरी परमसत्ता और या शरीर धारी भगवान समझा गया है। गीता का प्रयास यह है कि

परस्पर—विरोधी एवं विषमाङ्ग तत्त्वों का संश्लेषणात्मक समन्वय करके उनका यह पूर्ण रूप से एकत्रीकरण किया जाए। यही कारण है कि हमें इसके अन्दर प्रकट रूप में मोक्ष के उद्देश्य तथा उसकी साधना के उपायों के विषय पर परस्पर—विरोधी मत मिलते हैं। यह देखकर कि गीता सिद्धान्तों का संगतिपूर्ण ग्रन्थ नहीं है, विभिन्न लेखकों ने विभिन्न प्रकार से इस असंगति की व्याख्या की है। गार्ब तथा होपकिंस की धारणा है कि भिन्न—भिन्न काल में अनेक लेखकों ने इस पर कार्य किया है। गार्ब के मतानुसार, आदिम गीता ईसापूर्व दूसरी शताब्दी में एक आस्तिकवादपरक लघु पुस्तिका के रूप में लिखी गई और उसका आधार सांख्ययोग था, भेले ही ईसा के पश्चात दूसरी शताब्दी में उपनिषदों के एकेश्वरवादी समर्थकों ने इसमें रूपान्तर किया। ये दो सिद्धान्त अर्थात् आस्तिकवाद या ईश्वर ज्ञानवाद तथा सर्वेश्वरदयाल एक—दूसरे के साथ मिले हुए हैं। ये कभी सर्वथा असम्बद्ध रूप में और कभी शिथिल सम्बन्ध में मिलते हैं। और यह भी बात नहीं है कि इनमें एक एक को तो निम्न श्रेणी का, सामान्य बोधगम्य अथवा सर्वसाधारण व्यक्तियों के लिए समझा जाए, तथा दूसरे को उच्च श्रेणी का केवल उक्त सत्ता का प्रतीक—स्वरूप है, और वेदान्त का सर्वेश्वरवाद स्वयं परम यथार्थता है।

श्रीमद् भगवद्गीता सर्व वेद मयी है। वास्तव में गीता एक उपनिषद है। और कथ्य है यह भगवान कृष्ण की वाणी है। जो कर्मयोग के साथ—साथ मुक्ति भी अवधारणा को फलीभूत करती है। भगवान ने कर्म की तथा धर्म की आस्थाओं को बल देते हुए स्पष्ट कहा है—

**यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः  
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानम् सृजा महम्  
परित्राणाम् साधूनाम्, विनाशाय चदुस्कृतान्  
धर्म संस्थापनार्थाय संभवानि युगे—युगे।**

स्पष्टतः धर्म की स्थापना हेतु भगवान का अवतार होता है। धर्म को जाति से जोड़ने की बात गीता नहीं कहती वह धर्म अर्थात् शिक्षा को एक दूसरे के पर्याय के रूप में दर्शाती है। जिस प्रकार गीता सही गलत में अन्तर करना सिखाती है वही कार्य शिक्षा भी करती है। सीधा आशय है गीता ही ऐसा ग्रन्थ है, या यूँ

कहें कि विचार है जो व्यवहार में परिवर्तन करती है । वह न केवल जीवन के मर्म को समझाने में समर्थ है अपितु श्रष्टि के रहस्यों को भी उजागर करती है । यहाँ स्पष्टतः कह सकते हैं कि 'सर्वभूत हिते रवाः अर्थात् सभी का वास्तविक कल्याण करने में समर्थ है गीता । शिक्षा को सीधे तौर पर गीता का बिम्ब ही माना जा सकता है । समाज वैसा ही होगा जैसी शिक्षा होगी, जो पुस्तकीय ज्ञान कदापि नहीं है । यह समाज को दिशा

देने वाली पावनी निर्मल धारा है जो प्रत्येक मनुष्य में जीवन्त है । 'अहब्रह्मस्थि' से सर्व चेतना में निहित की शिक्षा देने वाली गीता बन्दनीय व आदरणीय है ।

### **सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

- (1) श्रीमद्भागवत गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर
- (2) गीता दर्शन, गीता प्रेस, गोरखपुर

\*\*\*\*\*